REVIEW OF RESEARCH

मधुबनी जिला में गरीब किसान एवं मजदूरों के आर्थिक विकास की विभिन्न सरकारी योजनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

विकास कुमार सुधाकर

शोधार्थी , वाणिज्य , वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

भूमिका

मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभ से कृषि विशाल जनसंख्या की जीविका का प्रधान साधन रही है। वास्तव में, कृषि सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन का पोषक रही है। इतना ही नहीं, यह आदि काल से ही सभी विज्ञानों और कलाओं की सिरमौर, मानव सभ्यता का प्रतीक और भौतिक प्रगति का सूचक समझी जाती रही है। मूल रूप में इसे आर्थिक विकास की कुंजी भी कहा जा सकता है क्योंकि औद्योगीकरण भी मुख्यतः कृषि –विकास की ही देन है। आज के औद्योगिक दृष्टि से विकसित महत्वपूर्ण राष्ट्रों–इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, रूस तथ जापान के औद्योगिक विकास का इतिहास भी इस बात का साक्षी है। वास्तव में, इन देशों मे तीव्रगति से कृषि के विकास के औद्योगीकरण के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

यह सर्वविदित है कि आज के अधिकांश अल्प–विकसित राज्य या जिला, जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है अपने सीमित साधनों द्वारा आर्थिक विकास की ऊंची दर तक प्राप्त नहीं कर सकते जबतक कि वे अपने आधारभूत कृषि उद्योग को सुमन्त न कर लें। सच पूछा जाय तो कृषि आय में वृद्धि आर्थिक विकास की प्रेरणा शक्ति है और यदि कोई सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल सिद्ध होता है तो समस्त विकास की प्रक्रिया ही अवरूद्ध हो सकती है। प्रो0 लीविस, हुवर, वाइनर तथा किन्उलवजर जैसे आर्थशास्त्रियों का मत है कि अल्प–विकसित देशों के विकास की योजना में कृषि–विकास को निश्चित रूप से प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए क्योंकि अतिरिक्त मांग की पूर्ति, आत्मनिर्भरता एवं निर्यात–बृद्धि जैसी आधारभूत समस्याएँ कृषिगत विकास से ही हल की जा सकती है। प्रो0 शुल्ट्ज के अनुसार, ''कोई भी अल्प–विकसित राष्ट्र खाद्यान्नों में आत्म–निर्भरता प्राप्त किये बगैर द्रुतगति से अपने आर्थिक विकास की कल्पना भी नही कर सकता।'' तात्पर्य यह है कि कृषि का विकास आर्थिक विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तेयार करने में अकथनीय सहयोग प्रदान करता है।

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका :

(1) **कृषि की भूमिका** कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्राा में खाद्य–सामग्री उपलब्ध कराना हैं आज अल्प–विकसित राज्यों में कृषि का महत्त्व निम्नांकित दो बातों से और भी बढ़ जाता है–प्रथमतः तो इनमें से अधिकांश राज्यों में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर सामान्यतः 2.5 प्रतिशत होने के कारण खाद्यान्नों की मांग, तेजी के साथ बढ़ती है। द्वितीय, विकसित राज्यों की अपेक्षा इन राज्यों में खाद्य–सामग्री की मांग की आय–लोच पर्याप्त मात्रा में ऊंची होती है। एक अनुमान के अनुसार मांग की यह लोच खाद्यान्नों की मांग

में लगभग 3 से3.5 प्रतिशत तक वार्षिक वृद्धि कर देती है किन्तु इतना अधिक कृषि विकास की वृद्धि की दर को प्राप्त करना किसी भी अल्प–विकसित राज्यों की कृषि के लिए खुली चुनौती है।

अतः इन राज्यों के आर्थिक विकास के परिवेश में जब कृषि वस्तुओं की तेजी के साथ बढ़ती हुई मांग के तदनुरूप खाद्य–सामग्री की पूर्ति को नहीं बढ़ाया जाता तो उनके आर्थिक विकास का ढ़ाँचा ही चरमरा उठता है, स्फीतिक दबाव बढ़ने लगते हैं और जीवन–स्तर में ह्रास होने लगता है।

(2) **औद्योगिक कच्चे माल की आपूर्ति :** इतना ही नही, कृषि कुल प्रमुख उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति का भी मुख्य स्रोत होती हैं इनमें सूती–वस्त्रा, जूट, तथा चीनी उद्योग उल्लेखनीय है। सुविधापूर्वक कच्चा पदार्थ मिल जाने पर इनमें से कुछ उद्योग तो औद्योगिक विकास के लिए प्रमुख क्षेत्रा का भी कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड की महान औद्योगिक क्राति सूती–वस्त्रा उद्योग से ही प्रारंभ हुई थी। यदि कृषि क्षेत्रा पिछड़ा हुआ है तो औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति न हो पाने के कारण उद्योगों का विकास निश्चय ही मन्द होगा और आर्थिक विकास की दर भी नीची ही बनी रहेगी। इस प्रकार प्रो0 रोस्टोव के अनुसार कृषि औद्योगिक विकास की आधारशीला है और कृषि उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत प्रचलित पूंजी है।''

(3) **पूंजी निर्माण में सहायक :** कृषि का विकास पूंजी–निर्माण मे भी सहायक होता है। अधिकांश अल्प–विकसित देशों में एक ओर तो पूंजी की न्यूनता होती है जबकि दूसरी ओर उन्हें निर्माण संबंधी उद्योगों की स्थापना के लिए बड़ी मात्राा में निवेश करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति मे कृषि क्षेत्रा दो तरीके से पूंजी निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है : प्रथमतः, कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्रा की आय बढ़ जाने से बचत करने की क्षमता का विस्तार होता है। फलस्वरूप ऐच्छिक तथा अनिवार्य बचतों के रूप में सुगमता से पूंजी उपलब्ध हो जाती है। द्वितीय, कृषि में चूंकि, 'कम–पूंजी–प्रधान' तरीकों अथवा 'पूंजी बचाव उपायों का ही प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि करना संभव होता है। इसलिए कृषि क्षेत्रा, में रहन–सहन के स्तर को कम किये वगैर ही पूंजी–निर्माण के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त किये जा सकते है।'

(4) **विदेशी विनिमय की प्राप्ति का स्रोत** –विकास की प्रारंभिक स्थिति में अल्प विकसित देशों को आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्राा में पूंजीगत वस्तुओं तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों के आयात की भी आवश्यकता होती है। कृषि का विकास एवं विस्तार होने से निर्यात क्षमता बढ़ती है जिसका प्रभाव अधिक मात्राा में विदेशी विनिमय अर्जित करना होता है। इस प्रकार निर्यात व्यापार के लिए कृषि–उपजों का विस्तार, विदेशी विनिमय और आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

(5) **औद्योगिक माल के लिए बाजार तैयार करना–** इतना ही नहीं, कृषि औद्योगिक क्षेत्रा द्वारा निर्मित माल के लिए बाजार भी प्रदान करती है। कृषि की उत्पादकता में वृद्धि से ग्रामीण जनसंख्या की आय बढ़ती है जिससे औद्योगिक वस्तुओं की मांग अधिक हो जाती है और फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्रा का निरंतर विस्तार होते रहता है। इस प्रकार कृषि औद्योगिक क्षेत्रा के बाजार के रूप में आर्थिक विकास को प्रश्रय देती है।

(6) **अन्य पूंजी–प्रधान उद्योगों के लिए श्रम–शक्ति उपलब्ध कराना–** कृषि क्षेत्रा का एक अन्य योगदान पूंजी क्षेत्राों के लिए आवश्यक श्रम शक्ति को उपलब्ध बनाना है। कृषि के विकास के कारण जब उत्पादकता बढ़ती है तो वर्तमान जनसंख्या को खाद्य–सामग्री प्रदान करने के लिए कृषि क्षेत्रा में पहले की अपेक्षा कम लोगों की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप कृषि में संलग्न श्रम शक्ति का एक बड़ा भाग अन्य व्यवसायों के लिए मुक्त हो जाता है। विशेष रूप से विकास की प्रारंभिक अवस्था में गैर–कृषि क्षेत्राों के लिए श्रम–शक्ति का अधिकांश भाग कृषि क्षेत्रा द्वारा ही उपलब्ध कराया जाता है ।

मधुबनी जिला में औद्योगीकरण का कृषि विकास पर न्यूनतम प्रभाव :

अब प्रश्न यह है कि आर्थिक विकास की प्रारंभिक स्थिति में पहले औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी जाय अथवा कृषि के विकास को। वास्तविकता तो यह है कि कृषि–विकास एवं औद्योगीकरण दो परस्पर–विरोधी

विचार नहीं होकर परस्पर पूरक हैं। वे न केवल एक –दूसरे से अनन्य रूप में संबंधित हैं वरन् आर्थिक विकास की दो संयुक्त परंतु प्रेरक शक्तियाँ हैं। किन्तु इस सत्य के बावजूद अर्थशास्त्रियों मे निश्चित रूप से मतभेद रहा है और आज भी है। कुछ लोग केवल कृषि विकास के पक्षपाती हैं तो कुछ लोग औद्योगीकरण के समर्थक हैं जबकि कुछ लोग दोनों क्षेत्राों के सामंजस्य में विश्वास रखते है।

सर्वप्रथम तो कुछ विचारक कृषि को प्राथमिकता देने के पक्ष में हैं। इनके अनुसार कृषि औद्योगीकरण के आधार का कार्य करती है। इनके अनुसार विश्व के अधिकांश विकसित देशों के आर्थिक इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि कृषि–विकास से ही इन देशों के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिला है। बौर एवं यामे के अनुसार '' आज के औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील देश अतीत में मूलरूप से कृषि–प्रधान देश रहा हैं। इतिहासकारों द्वारा की गई खोज से भी यह पता चलता है कि प्रगतिशील अथवा विकासशील कृषि ने वृद्धि–शील निर्माणकारी उद्योगों की स्थापना एवं विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं।''

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र–संघ की एक विज्ञप्ति में भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि ''कृषि क्षेत्रा में पूरक परिवर्तन किये वगैर औद्योगिक क्षेत्रा का तीव्र गति से विकास अर्थ–व्यवस्था में ऐसी विषम परिस्थितियाँ–जैसे भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयाँ, मुद्रा–स्फीत का अत्यधिक दबाव, नागरीकरण तथा सामाजिक ढांचे का विकृत होना आदि उत्पन्न कर सकता है जिससे कि आर्थिक विकास पूर्णतया अवरूद्ध हो जायगा।''

श्री एच0 मिंट के मतानुसार कृषि–क्षेत्रा के विकास के वगैर निर्माणकारी उद्योगों का विकास बहुत अधिक समय तक संभव नहीं हो सकता क्योंकि संपूर्ण अर्थ–व्यवस्था के विकास की दर अंततः कृषि के विकास की दर पर ही निर्भर करती है।'' इसी प्रकार डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 रोस्टोव के अनुसार, '' कृषि–उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत कार्यशील पूंजी है ।''

इस प्रकार इस विचारधारा के अर्थशास्त्रियों के अनुसार कृषि–विकास आर्थिक–विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करता हैं ये आर्थिक विकास की दृष्टि से कृषि के विकास को निम्न कारणों से आवश्यक बतलाते हैं –

- कृषि के विकास से निरन्तर तथा तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की सुगमतापूर्वक भोजन सामग्री मिलती है।
- कृषि अनेक निर्माणकारी उद्योगों को कच्ची–सामग्री प्रदान करने का एक –मात्रा स्रोत भी है।
- कृषि की उपज का निर्यात कर औद्योगीकरण के लिए आवश्यक मशीनें आयात की जा सकती हैं।
- कृषि क्षेत्रा उद्योगों के लिए पूंजी प्रदान करने के साथ–साथ नयी औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार भी तैयार करता है।
- इससे विनिमय अर्थव्यवस्था का विकास होता है, साहसिक तथा प्रशासकीय योग्यता को प्रश्रय मिलता है और इस प्रकार यह आधुनिक औद्योगिक अर्थ–व्यवस्था के सफल संचालन को संभव बनाती है।

कृषि नीति के बदलते प्रतिमान का किसान एवं मजदूरों पर प्रभाव :

पिछले दिनों केन्द्र की सरकार ने कृषि संबंधी स्थायी संसदीय समिति की पहली रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति पर संसद में जानकारी देते हुए सूचित किया था कि इस समिति की अधिकांश सिफारिशें स्वीकार कर ली गई हैं। इसके साथ ही सरकार ने निजी तथा सार्वजनिक भागीदारी को प्रोत्साहन देने हेतु विपणन सुधारों की शुरूआत करते हुए कृषि निवेश में वृद्धि करने की भी जानकारी दी। सरकार ने पहले से ही कृषि ऋण को दो गुना करने, ऊसर भूमि पर कृषि संबंधी विशेष कार्यक्रम प्रारंभ करने, कृषि अनुसंधान में सार्वजनिक निवेश को बढ़ाने, ग्रामीण आधारभूत ढाँचा तथा सिंचाई व्यवस्था को मजबूत करने जैसे अनेक उपाय शुरू कर रखे हैं। राज्यों के लिए यह विकल्प छोड़ रखा है कि वे अपनी कृषि योजना के वृहद प्रबंध के तहत अपनी आवश्यकताओं तथा प्राथमिकताओं के अनुरूप योजनाओं का चयन करें।

कृषि उत्पादन का पिछड़ापन का किसानों एवं मजदूरों पर प्रभाव :

कृषि उत्पादन के संबंध में विशेष उल्लेखनीय बात है यह है कि 80 के दशक के बीच कृषि उत्पाद की बढ़त दर 3.4 प्रतिशत थी, किन्तु उसके बाद इसमें निरंतर गिरावट देखी गई और वर्त्तमान में यह 1.5 प्रतिशत

पर स्थिर है। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्रा का हिस्सा 24 प्रतिशत है, लेकिन इस क्षेत्रा में निवेश सकल घरेलू उत्पाद का मात्रा 1.3 प्रतिशत है। यह भी एक विडम्बना है कि भारत की आधी से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा अनाज उत्पादक देश है लेकिन भण्डारण, प्रसंस्करण और विपणन की समुचित व्यवस्था नहीं होने से हर साल बड़ी मात्राा में खाद्यान्न की बर्बादी होती है। एक अनुमान के अनुसार भण्डारण व्यवस्था के अभाव में लगभग 37 प्रतिशत फसल नष्ट हो जाती है। विशेष रूप से मध्यप्रदेश, राजस्थान व पंजाब में भण्डारण की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। यद्यपि गुजरात में गैर–सरकारी एजेंसियों के सहयोग से इस समस्या का काफी हद तक समाधान हो गया है। कीटनाशकों के भारी उपयोग से भी भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हुई है। यह भी जानकारी में आया है कि हरियाणा तथा पंजाब में जिंक, कॉपर, आयरन, मैंगनीज और जैसे पोषक तत्त्वों की भूमि में कमी पाई गई है, जबकि खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से ये दोनों राज्य अग्रणी हैं।

मधुबनी जिला में अर्थव्यवस्था के सात महत्वपूर्ण क्षेत्रा और कृषि का पिछड़ापन :

दसवीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा में अर्थव्यवस्था के जिन सात महत्वपूर्ण क्षेत्राों की पहचान की गई थी, उनमें से कृषि का प्रमुख स्थान है, उसके बाद जल, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, शहरी पुनर्निर्माण तथा आधारभूत ढांचे का स्थान आता ह। प्रधानमंत्राी ने योजना आयोग की पूर्ण बैठक में इस बात को स्वीकार किया कि कृषि पर उचित ध्यान न देने की वजह से विकास दर अपने निर्धारित लक्ष्य अर्थात् 8 प्रतिशत को प्राप्त नहीं कर सकी। इसलिए उन्होंने कृषि में सार्वजनिक निवेश तथा आधारभूत ढांचे के सुदृढ़ीकरण पर बल दिया।

वर्त्तमान में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कृषि को कैसे लाभकारी बनाया जाय ? इसमें संदेह की कोई गंजाइश नहीं है कि कृषि क्षेत्रा के लिए दीर्घकालिक पूंजी की आवश्यकता होती है, इसलिए कृषि क्षेत्रा में निजी क्षेत्रा की भागीदारी आज की मांग और वास्तविकता है। लेकिन कृषि के साथ ही हमारे देश में ग्रामीण स्वास्थ्य, विद्युतीकरण तथा सड़कों के समुचित विकास पर भ समान रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके अलावा, गाँवों के परंपरागत बागान तथा लघु उद्योगों को भी पुनर्जीवित करना आवश्यक है। गाँवों में खादी तथा ग्रामोद्योग की इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसके अलावा सिंचाई और बंजर भूमिका तथा कृषि अनुसंधान व विस्तार कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त सरकारी निवेदन की व्यवस्था करना, किसानों के लिए उदार शर्तों पर बैंक कर्जों की व्यवस्था करना भी बहुत जरूरी है। चूंकि आज भी भारतीय कृषि मानसून के अनिश्चित मिजाज पर निर्भर है, जिसके कारण वह अतिवृष्टि और अनावृष्टि जैसी समस्याओं से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। इसलिए जल निकायों की मरम्मत, नवीनीकरण और पुनर्स्थापना, बाद प्रबंधन, वर्षा जल संचयन तथा भू–क्षरण नियंत्राण पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इस संबंध में सरकार का यह प्रयास सराहनीय है कि वह ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्राों को ऋण सहायता प्रदान करने के लिए सामाजिक संगठनों, ग्रामीण स्टालों तथा ग्राम सूचना केन्द्रों की संरचना का उपयोग करके एजेंसी मॉडल के रूप में बैंकों को अनुमति देने संबंधी मुद्दे पर विचार करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक से परामर्श कर चुकी है।

इसके अलावा, सरकार सहकारी बैंक प्रणाली के लिए अपेक्षित सुधारों पर विचार करने के लिए गठित कार्यबल की सिफारिशों के कार्यान्वयन के प्रति भी गंभीर है, ताकि इन बैंकों से कृषि ऋण का प्रवाह निर्बाध रूप से हो। इस संबंध में नाबार्ड की भूमिका का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है। निश्चित तौर पर ग्रामीणों को बचत के लिए प्रोत्साहित करने, ऋण सहायता और स्वयं समूहों का निर्माण कर उन्हें स्वयं की सहायता करने हेतु प्रेरित कर ग्रामीणों को उनकी रुचि के अनुकूल कार्यों में दक्ष बनाकर जीविका अर्जन हेतु सक्षम बनाने में नाबार्ड की भूमिका सराहनीय है। सरकार ने ग्रामीण अव–संरचना विकास निधि से 100 करोड़ रुपये उपलब्ध कराने हेतु नाबार्ड को अनुमति भी प्रदान की है। सिंचाई जल के बेहतर उपयोग हेतु सूक्ष्म सिंचाई पर सतत जोर देना भी जरूरी है। स्मरण रहे सूक्ष्म सिंचाई कम दाब, कम मात्राा की सिंचाई प्रणाली है जो अधिक उपज दने वाल उन्नत किस्मों के लिए उपयुक्त है। कृषि क्षेत्रा में इसके जरिए क्रान्तिकारी बदलाव लाया जा सकता है।

यद्यपि सरकार ने यह स्वीकार किया है कि विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों से भारतीय बीज बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों का दबदबा होने की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि किसानों के हितों की रक्षा हेतु बीज कानून–1966 तथा पौध विभिन्नता व किसान कुछ ब्रान्डेड बीजों को छोड़कर बिना पंजीकरण के बीजों को सुरक्षित रखने, उनका इस्तेमाल करने, बोने और अपनी फसल को बेचने के अधिकारी हैं। लेकिन यहाँ यह ध्यान

देना जरूरी है कि खाद्यान्न उत्पादन के संबंध में देश में भारी क्षेत्रीय विषमता व्याप्त है। एक ओर तो पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्य बम्पर फसल उगाने के रूप में विख्यात है तो वही दूसरी ओर कालाहांडी, पलामू, सरगुजर तथा रेगिस्तानी क्षेत्रा के ग्रामीण दाने–दाने को मोहताज हैं। पहाड़ी इलाकों की जोत का आकार छोटा है तथा वे दूर–दूर तक छिटके हुए हैं। इसलिए पर्याप्त मेहनत के बावजूद वहाँ लोगों के लिए वर्षभर का अनाज नहीं होता। इसलिए प्रत्येक राज्य की भौगोलिक स्थिति के अनुसार अधिक पैदावार देने वाली उन्नत किस्म के बीजों पर अनुसंधान होना तथा उनकी किसानों के लिए उपलब्धि को सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। इस संबंध में सरकार द्वारा बीटी कॉटन की चार संकट किस्मों को मंजूरी प्रदान कर उन्हें गुजरात, मध्यप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में व्यावसायिक बुआई हेतु जारी करना भी एक सराहनीय कदम है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना भी जरूरी है कि जीएम फसलों के संबंध में प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक प्रो. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित कार्यबल ने कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग के संबंध में जो विस्तृत रोडमैप सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया है उस पर ध्यान देने की जरूरत है। इस संबंध में सरकार को एक स्वतंत्रा राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी विनियामक प्राधिकरण की स्थापना करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रो. स्वामीनाथन का स्पष्ट मत है कि ग्रामीण क्षेत्रा में व्याप्त गरीबी दूर करने हेतु वहाँ अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध कराना जरूरी हैं। राष्ट्रीय कृषक आयोग ने भी आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए संपूर्ण देश में 'ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों' की स्थापना करने की सिफारिश की है। निश्चित रूप से यह एक महत्वपूर्ण पहल है। प्रो. स्वामीनाथन किसानों के हितों के लिए सर्वसम्मति से एक राष्ट्रीय नीति तैयार करने के भी पक्षधर हैं। एक आवश्यक बात यह है कि देश में किसानों को रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद को प्रोत्साहन `ना चाहिए। ऐसी व्यवस्था करने का प्रयास किया जाय कि किसानों को रासायनिक उर्वरकों पर अनुदान न देकर उन्हें जैविक खाद के उपयोग हेतु प्रेरित किया जाय। अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य देशों में जैविक खाद द्वारा उत्पादित अन्न, फल, सब्जियों की मांग है, जबकि भारत में स्थित विपरीत है। इसलिए रासायनिक खाद के स्थान पर हमें अपने पशुधन के बारे में गंभीरता से विचार करना चाहिए। गोवंश के गोबर से बनने वाली केंचुआ खाद से भारतीय कृषि में आमूलचूल परिवर्तन लाया जा सकता है। इससे रासायनिक खादों पर हो रही निर्भरता तो घटेगी ही साथ ही साथ मिट्टी के पोषक तत्वों के क्षरण पर भी रोक लगेगी। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि वर्त्तमान स्थिति में भारतीय कृषि को विश्व व्यापार संगठन की भेदभावपूर्ण कृषि सब्सिडी की वजह से भी चुनौतियाँ मिल रही हैं तथा सरकार विकसित देशों की इस भेदभावपूर्ण नीति का डटकर मुकाबला भी करती आ रही है। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि विकसित राष्ट्र का सपना भारत में तभी फलीभूत हो सकता है जब हम ग्रामीणों को शक्तिशाली बनाने के लिए भारतीय कृषक को केन्द्र में रखकर कृषि के विकास अैर अनुसंधान के अलावा इसके विविधीकरण की दिशा में एक दूसरी हरित क्रांति का आगाज करें।

स्वतंत्रा भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण की आधारशिला बनाने का विचार पहली बार फरवरी, 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रकट किया था। इसके फलस्वरूप स्वतंत्रा भारत में प्रथम योजना आयोगा 1950 में गठित किया गया था। गठन के बाद अर्थव्यवस्था की जरूरतों पर आधारित योजना बनाने का प्रक्रिया विभिन्न योजनाओं में जारी रही।

विभिन्न योजनाओं में कृषि नीति का किसानों एवं मजदूरों पर प्रभाव :

प्रथम पंचवर्षीय योजना में आर्थिक स्थिरता को महत्व दिया गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारी एवं बुनियादी उद्योगों पर बल था। तीसरी व चौथी योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्रा को प्राथमिकता दी गई। अर्थव्यवस्था में सर्वसाधारण को होने वाले लाभ तथा गरीबी उन्मूलन के बारे में पांचवीं योजना में जोर दिया गया। छठी योजना में रोजगारप संबंधी स्कीमों एवं कार्यक्रमों को महत्व दिया गया ये पांचवीं योजना के प्रयासों की कड़ी में थे। सातवीं योजना में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी पर जोर डाला गया। आठवीं व नवीं योजना में जिन बातों पर जोर दिया गया वे थीं–विकेन्द्रीकरण, सहकारी संघवाद और गरीबी उन्मूलन की अधिक विवेकसम्मत पद्धतियाँ। दसवीं योजना में नई सहस्त्राब्दी के प्रारंभ में पिछली उपलब्धियों के आधार पर देश के नवनिर्माण का लक्ष्य रखा गया। साथ ही पिछली कमजोरियों को दूर करने का प्रयास भी किया जा रहा है। कृषि विकास को दसवीं योजना के मुख्य अंश के रूप में लिखा गया है, क्योंकि इस क्षेत्रा के विकास में लाभों का प्रसार खासतौर

से ग्रामीण गरीबों को होना है। कृषि के क्षेत्रा में निवेश का स्त्राी–पुरुष समानता की दृष्टि से भी बहुआयामी महत्व है, क्योंकि कृषि क्षेत्रा में ज्यादातर महिला श्रमिक काम करती हैं।[6]

भारत ने पहली बार राष्ट्रीय कृषि नीति पर अमल शुरू किया है। इसके साथ ही इस देश का भविष्य पूर्व की नीतियों से हटकर काफी भिन्न तरीके से निरूपित करने का भारत ने फैसला किया है। नई सहस्त्राब्दि की शुरूआत भारत की कृषि नीति की समीक्षा एक उपयुक्त मौका है। चुनौतियों का ठीक ढंग से सामना करने के लिए जरूरी है कि कृषि नीति में इस बात का साफ–साफ चर्चा होनी चाहिए कि भारतीय और विश्व अर्थव्यवस्था के मद्देनजर सरकार की क्या भूमिका होनी चाहिए। भारत अब एक मजबूत और प्रभावशाली निजी क्षेत्रा बन गया है। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि भविष्य में देश का विकास काफी हद तक निजी क्षेत्रा के कार्य–संपादन पर निर्भर रहेगा। इसलिए हमारे देश की नीतियाँ अवश्य ही ऐसी होनी चाहिए जिससे इस प्रकार के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बने। फिर भी सरकार को एक अति महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

जहाँ तक सेवा क्षेत्रा, ग्रामीण संरचना, विकास, सड़क विकास आदि का प्रश्न है, उपभोक्ता के प्रति निष्पक्ष व्यवहार, पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक आधुनिक नियामक प्रणाली के सृजन एवं उसके रख–रखाव तथा बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराने में सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसलिए अर्थव्यवस्था के समक्ष मौजूदा बदली परिस्थितियों को परिलक्षित करने के लिए सरकार की भूमिका की नई परिभाषा भावी कार्य नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष होगा।

राष्ट्रीय कृषि नीति में भारतीय कृषि की विशाल अदोहित क्षमता को वास्तविक रूप देने, तीव्रतर कृषि विकास को समर्थन देने के लिए ग्रामीण अवसंरचना को सुदृढ़ करने, मूल्य प्रवर्धन को बढ़ावा देने, कृषि व्यवसाय की वृद्धि को तीव्रता प्रदान करने, ग्रमीण क्षेत्राों में रोजगार का सृजन करने, किसानों, कृषि मजदूरों ओर उनके परिवारों का जीवन–स्तर सुधारने, शहरी क्षेत्राों में प्रवास को हतोत्साहित करने तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्व व्यापीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने की परिकल्पना की जाने लगी। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :–

- वृद्धि, जो संसाधनों के कुशल उपयोग पर आधारित है तथा अपनी मृदा, जल और जैव विविधता का संरक्षण करना।
- साम्य वृद्धि, अर्थात् वृद्धि जो क्षेत्रा दर क्षेत्रा तथा किसान दर किसान व्याप्त है।
- ऐसी वृद्धि जो मांग के अनुसार हो और स्वदेशी बाजारों की मांग को पूरा करे तथ आर्थिक उदारीकरण और विश्व व्यापीकरण से उत्पन्न चुनौतियों की स्थिति में कृषि उत्पादों के निर्यात से अधिकतम लाभ मिल सके।
- वृद्धि जो प्रौद्योगिकीय, पर्यावरणीय तथा वित्तीय रूप से दीर्घकालीन हो।

निष्कर्ष :

उत्तरवर्ती बिहार को 3 जलवायुवीय मंडलों में विभक्त गया है, जिसमें प्रथम मंडल में चंपारण से समस्तीपुर तक, द्वितीय मंडल में बेगूसराय से किशनगंज तक और तृतीय मंडल में भभुआ से भागलपुर तक है। इन मंडलों को जलवायु एवं मिट्टी की संरचना के आधार पर विभक्त किया गया है और इसमें कृषि विभाग का प्रयास है कि उसी के अनुरूप खेती को प्रोत्साहन दिया जाए। वहां वही फसल लगायी जाय जो उन जलवायु मिट्टी में अच्छी उपज करती है। जैसे प्रथम मंडल में ईख, धान एवं मक्का पर जोर दिया जा रहा है। द्वितीय मंडल में धान, मक्का एवं पटुआ को बढ़ावा दिया जा रहा है एवं तृतीय मंडल में वहां की प्रमुख फसल गेहूं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, और साथ–ही–साथ उत्पादन को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कृषि का आर्थिक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः इतिहास इस बात का साक्षी है कि कृषि के विकास के वगैर कम ही देशों मे आर्थिक विकास की गति तीव्र हो पायी है। किन्तु, जैसे–जैसे राज्य आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होते जाता है, कृषि की सापेक्षिक भूमिका क्रमशः कम होती जाती है। अन्ततः, कृषि जो विकास की प्रारंभिक स्थिति जीविकोपार्जन का साधन होती है तथा राष्ट्रीय आय का एक बड़ा अंश प्रदान करती है, आर्थिक विकास के साथ–साथ कम महत्वपूर्ण होती जाती है तथा आय, रोजगार दृष्टि से उद्योग तथा अन्य व्यवसायों की अपेक्षा इसका महत्व क्रमशः घटने लगता है।

आर्थिक विकास के साथ–साथ कृषि पर आश्रित व्यक्तियों का प्रतिशत भी कम होने लगता हैं। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि कृषि–विकास की गति या दर इसकी उपज, जिसका 80 से 90 प्रतिशत भाग तक खाद्यान्न का होता है, की मांग में वृद्धि पर निर्भर करती है और प्रति–व्यक्ति औसत आय में वृद्धि के साथ–साथ कृषि की उपज की मांग में क्रमशः कमी होती जाती है। यह प्रवृत्ति, जो 'एंजिल्स के उपभोग नियम ' के नाम से उल्लेखनीय है, लगभग हरेक अर्थ–व्यवस्था में जो विकास की ओर उन्मुख है, देखने को मिलती है। किन्तु इस प्रवृत्ति को दो तरीकों से रोका जा सकता है। सर्वप्रथम तो, समाज में आय की वितरण को अधिक समान बनाकर जिससे अत्यधिक निम्न आय वाले वर्ग की आय में वृद्धि होगी और वे अपनी आय में इस वृद्धि का अधिकांश भाग खाद्यान्न पर व्यय करेंगे। द्वितीयतः, कृषि–पदार्थों के आधिक्य के निर्यात को बढ़ाकर भी इस प्रवृत्ति को थोड़े समय के लिए रोका जा सकता है। जहाँ तक अखाद्य या व्यावसायिक फसलों का प्रश्न है, इनमें भी औद्योगिक विकास के साथ–साथ नयी–नयी स्थानापन्न वस्तुओं के विकास की संभावना सदा बनी रहती है। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक रेशों (कपास, ऊन तथा जूट) की जगह आज बड़े पैमाने पर कृत्रिम रेशों का उपयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार, लकड़ी की जगह इस्पात तथा सीमेंट का प्रयोग। किन्तु, यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रतिस्थापन की पद्धति बिल्कुल पूर्ण नहीं होती। अतएव, व्यावसायिक कृषि–फसलों की मांग भी सदा बनी रहती है। इसके लिए उत्पादकों को केवल अपनी वस्तुओं के गुण तथा उनकी उचित विपणन–व्यवस्था पर ध्यान देना होता है।

संदर्भ स्रोत :

1. Baljinder Kaur et al (2011) Causes and Impact of Labour Migration: A Case Study of Punjab Agriculture, Agricultural Economics Research Review Vol. 24 (Conference Number), pp 459-466.
2. P. Mohanraj (2013), A market survey on Changing Scenario Of Unorganized Sectors In India: An Empirical Study, pp. 137-139.
3. India Labour and Employment Report (2014), India Labour and Employment Report, 153-155.
4. Economic Survey 2018, Bihar, Patna, pp. 126-130.
5. Fact sheet of Madhubani District, 2018, pp. 131-134.
6. Dr. Muna, Kalyani (2015), Unorganised Workers: A Core Strength of Indian Labour Force: An Analysis, International Journal of Research in Business Studies and Management Volume 2, Issue 12, PP 44-56
7. Kalpana, devi & U.V.Kiran (2015), Work Related Musculoskeletal Disorders Among Workers In Unorganized Sector, International Journal of Technical Research and Applications, Volume 3, Issue 3, PP. 225-229.
8. Census Report 2011, New Delhi, different page. Akhil, A. and Bijoyata,Y. (2011), Recent developments in farm labour availability in India and reasons behind its short supply. Agric. Econ. Res. Rev., 24, New Delhi, pp. 164-166.